प्रवासी हिंदी कविता : बाल मनोविज्ञान के संदर्भ में

डॉ. अनुपमा तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी
अलायंस विश्वविद्यालय,बंगलूरू
कर्नाटक, भारत
ईमेल – anupama.tiwari@alliance.edu.in
मो. 8886995593/ 8142623426

बाल कविताओं का आरंभ कब और कैसे हुआ, यह प्राथमिक रूप से निश्चित कर पाना दुर्लभ है। वैश्विक धरातल पर बाल साहित्य का आकलन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि पाश्चात्य देशों में इंग्लैंड, अमेरिका और रूस का बाल साहित्य सर्वाधिक समृद्ध व व्यापक है। अमेरिका और इंग्लैंड का बाल साहित्य जहाँ अंग्रेजी में सृजित है वहीं रूस का रूसी भाषा में लिखा गया है। इंग्लैंड का अंग्रेजी बाल साहित्य पाश्चात्य देशों में सबसे पुरातन है। बाल साहित्य की सर्जना करना उतना ही दुर्लभ है जितना की एक रोते हुए शिशु बालक को हंसाना, उनके साथ उनकी भावनाओं में रच - बस जाना। बालकों की दुनिया उनके द्वारा निर्मित उस सुनहरे घोसले की तरह होती है जहाँ मोह, माया, छल प्रपंच, द्वेष - भेद कपट, राजनीति का प्रवेश पाना दुर्लभ होता है। बच्चों के साहित्य की संरचना करने के लिए उन्हीं की भांति निर्मल और निश्चल स्वभाव का बनना पड़ता है तब कहीं जाकर वह मर्म कविता में दिखाई देती है। बाल साहित्य के सृजनात्मकता के बारे में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों का अलग-अलग दृष्टिकोण है। भारत में बांग्ला भाषा में विशेष और सर्वाधिक पुस्तकें बच्चों के लिए लिखी गई हैं। रविंद्रनाथ ठाकुर ने बच्चों के साहित्य पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा, “ठीक से देखने पर बच्चे जैसा पुराना और कुछ नहीं है देश, काल, शिक्षा, प्रथा के अनुसार वयस्क मनुष्य में कितने नए परिवर्तन हुए हैं, लेकिन बच्चा हजारों साल पहले जैसा था, आज भी वैसा ही है। वही अपरिवर्तनीय पुरातन बारंबार आदमी के घर में बच्चे का रूप धरकर जन्म लेता है, लेकिन तब भी सबसे पहले दिन वह जैसा नया था, जैसा सुकुमार था, जैसा भोला था, जैसा मीठा था, आज भी ठीक वैसा ही है। इस जीवन चिरंतनता का कारण यह है कि शिशु प्रकृति की सृष्टि है, जबकि वयस्क आदमी बहुत अंशों में आदमी की अपने हाथों की रचना होता है। उसी तरह बच्चों के बहलाने के लोकगीत भी शिशु साहित्य है, वे मनुष्य के मन में अपने आप जन्मे हैं।”1 रवीन्द्रनाथ जी के इस विचार के अनुसार कह सकते हैं कि बाल साहित्य शाश्वत साहित्य है। माँ की लोरी, गीत, पंचतंत्र की कहानियां पुरातन हैं और यह सृष्टि के आरंभ में ही विकसित हुई हैं। ये कृतियां बालमन को आकृष्ट करती हैं तथा सकारात्मक ऊर्जा भर कर नीतिवान बनाकर सन्मार्ग पर बढ़ने को उत्प्रेरित करती हैं। “पंचतंत्र” के लेखक ने लिखा था -

“यन्नवे भाजने लगेनः संस्कारी नान्यथा भवेत।

कथाच्छलेन बालाना नीतिस्तदिह कथ्यते॥”

“अर्थात जिस प्रकार किसी नवीन पात्र के कोई संस्कार नहीं रहते, उसी प्रकार बच्चों की स्थिति होती है। इसलिए उन्हें तो कथा के द्वारा ही नीति के संस्कार बताना चाहिए। “पंचतंत्र” विश्व की सबसे प्राचीन पुस्तक मानी गई है और इसलिए आचार्य विष्णु शर्मा की परिभाषा, बाल साहित्य की प्रथम परिभाषा मानी जानी चाहिए।”2 इस श्लोक के विश्लेषण के आधार पर यह निर्धारित कर सकते हैं कि विश्व भर में बाल साहित्य लेखन या वाचन की परंपरा भारत से पुष्पित पल्लवित हुई है। भारत संस्कारों का देश है। माँ के गर्भवती होने से ही सारे संस्कार आरंभ कर दिए जाते हैं। जन्म उपरांत भी पोषण संस्कार का विधान है। प्राथमिक गुरु माँ को ही माना गया है। माँ अपनी लोरी में, गीतों में नवजात शिशु को अपरोक्ष रूप से अपने परिवार व समाज के संस्कार से बालक को नीतिवान बनाने का प्रयत्न करती है वह गीत लोक से ही संग्रहित होते हैं। अर्थात चांद मामा, सूरज चाचा, तितली रानी, मेघ राजा, पहाड़ियों की परिकल्पना। “सारांश यह है कि आज बाल साहित्य लेखन, पहले जैसा नहीं रहा। बीसवीं शताब्दी में बाल साहित्य की एक विश्वसनीय क्रांति सी हुई है और भारतीय बाल साहित्य भी उससे पूरी तरह प्रभावित हुआ है इस क्रांति के परिणाम स्वरूप ही बाल साहित्य को नैतिक उपदेशों की सीमा से बाहर निकाला गया है। बच्चों के जीवन और मनोभावों को प्राथमिकता दी गई है। बच्चों के लिए अब सदैव कल्पना लोक में विचरण करना आवश्यक नहीं रह गया है। उन्हें

यथार्थ के धरातल पर लाकर जीवन के सत्य और मूल्यों को पहचानने के योग्य बनाने का प्रयत्न किया जाने लगा है।"3 बालक जैसे ही परिवार की परिधि में विकसित होता जाता है वह सारी कल्पनाओं, मधुरिम भावनाओं से ओतप्रोत होता जाता है। अनंत जिज्ञासाएँ अनेक कौतूहल उसके मानस पटल पर विचरती ही रहती हैं। शैशवावस्था में बालकों की मानसिक वृद्धि बहुत तीव्र गति से होती है। इस उम्र में ही वे अपने परिवेश को निहारते व परखते हैं। आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर मन की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने को बहुत उत्सुक होते हैं। पाल हेजार्ड के अनुसार - "पुस्तकें वे ही अच्छी होती हैं जो बच्चों को बाह्य ज्ञान ही नहीं बल्कि अन्तर्ज्ञान भी दे सकें। एक ऐसा सरल सौन्दर्य दे सकें जिसे वे सरलता से ग्रहण कर सकें और बच्चा की आत्मा में ऐसी भावना का संचार करें जो उसके जीवन में चिरस्थायी बन जाय। वे सार्वलौकिक जीवन के प्रति उनके मन में आस्था उत्पन्न करें और खेल की महत्ता तथा साहस के प्रति आदर जागृत करें।"4 आज बाल साहित्य का स्वरूप पूर्णतः बदल चुका है। हिंदी के प्रवासी कवियों ने भी अपनी कलम इस दिशा में चलाई है - नॉर्वे के कवि सुरेश चंद्र शुक्ल शरद आलोक ने बचपन के बारे में लिखा कि -

"दौड़ दौड़ तितली के पीछे, उसे पकड़ना उसका मरना।

फिर पुस्तक में उसे संजोना, सुख - दुख सांझा रिश्ता रखना।

झूठ मूठ थी लगी भली थी, माँ - दादी की कही कहानी।

सुनकर रोमांचित हो जाते, सुधियों की बस रही निशानी।"5

बाल कविता बालकों के तीन स्तरों को संबोधित करती हैं। प्रारंभिक स्तर चार से छः वर्ष तक के आयु वर्ग तक, दूसरा वर्ग सात से नौ वर्ष तक तथा तीसरा वर्ग दस से पन्द्रह वर्ष तक हो सकता है। "नन्दन" पत्रिका के विशाल संग्रह में बाल स्तर की त्रिवेणी मिलती है। शरद आलोक जी ने जीवन की आपा - धापी व्यस्तता और तनाव के जीवन से मुक्ति पाने के लिए बचपन की स्मृतियों में प्रवेश कर जाते हैं तथा, अतीत की मधुर स्मृतियों को याद कर सुख पाते हैं। बाल कविता में मौसम, पर्व, प्रकृति बच्चों के प्रिय प्रसंग होते हैं। इस उद्धरण में भी कवि, बचपन के सुधियों की परतों को जितना ही खोलते जाते हैं, मन रोमांचित ही होता जाता है। दादी - माँ की कहानी, तितली संग अठखेलियां कवि की भावधारा को शब्दों में उड़ेल देती है। इसी प्रकार एक और बानगी प्रस्तुत है -

"गलियों में अमरूद तोड़ते, बिछुडो को हम पुनः जोड़ते।

मैदानों से कंकड़ चुनते, जो पांवों में कभी चुभे थे।।

पर्यावरण ध्यान बहुत प्रिय। क्या भूलें क्या याद करें प्रिय।

दूर वहाँ तक पैदल जाते, जहां कहीं भी फिल्म दिखाते।

हरफनमौला कब पढ़ते हैं ? अपनी फिल्मी हीरो समझे थे।।

कभी फेल व पास हुए प्रिय। क्या भूलें क्या याद करे प्रिय।

मन जहां बरसात का पानी, भेदभाव दुनिया ना जानी।

किसके घर में बनी सेवइयाँ, किसके घर की गुझिया रानी।।

आता था तब स्वाद बहुत प्रिय। क्या भूलें क्या याद करें प्रिय।।"6

बच्चे भले ही नादान होते हैं, पर वे बड़े बुजुर्गों से कुछ अधिक समझदार होते हैं। उनका हृदय पाक रहता है। कवि ने इसी मुद्दे को इन पंक्तियों में व्यक्त किया है। कवि मित्रों के साथ फल तोड़ते, रूठे हुए सखा को परस्पर मिलाने का प्रयत्न करते। उनके भीतर का उत्साही बालमन बिना अध्ययन के हीरोपंथी के द्वारा असाध्य कार्य को साध्य बनाने की क्षमता रखता है। परस्पर हंसी - गुलछरे उड़ाए जाते थे, परंतु युवावस्था में प्रवेश करते ही दंभ और मिथ्या अभिमान जाने - अनजाने प्रवेश कर ही जाती है, जो कि

व्यक्ति व परिवार के विकास में बाधक है न कि साधक। कवि का आशय है कि किसी भी देश की प्रगति तभी संभव है जब आपस में प्रेम, सौहार्द्र, एकता की भावना, छल - द्वंभ - द्वेष का परिष्कार, वैमनस्य का तिरस्कार कर सबको गले लगा कर एक साथ - एक जुटकर होकर आगे बढ़ा जाए। जहाँ ये ताकत होगी वहीं, मजबूती और शक्ति होगी। अर्थात प्रत्येक शुभ लक्षण और कार्य की पुनीत भावना तो बच्चों में ही समाहित रहती है उन्हें भगवान स्वरूप भी माना जाता है। देव भी अबोध के मन में सात्विकता का ही संचार करके उन्हें प्रगति मार्ग पर उन्मुख करना चाहता है, परंतु यह तो मनुष्य का स्वयं का स्वार्थ है कि वह कपट युक्त सामाजिक परिवेश में रहकर स्वयं को इसी के अनुरूप ढाल देता है। बच्चों के पावन स्वभाव के संदर्भ में पुष्पिता अवस्थी ने लिखा कि -

"गुड़िया होती है सदा- सजी- धजी डाक्टरनी

और गुड्डा अंतरिक्ष यान के भीतर

चांद और अन्य ग्रहों की खोज में

कारें, बसें, रेलगाड़ियाँ उलटी पलटी नहीं होती हैं कभी

बल्कि उनकी बनाई सड़क पर होती है सदा

लाल सिगनल पर रुकी हुई गाड़ियाँ"7

बच्चों की दुनिया प्रगतिशील होती है। मन में न कोई कपट होता है और न ही साजिस की भावनाएं। प्रत्येक कार्य की उनकी विशेष शैली होती है। उनके खेल में भी जहाँ नवीन कल्पनाएं स्थान पाती हैं वहीं नियम कानून की परिकल्पना भी उनके जेहन में रहती है। अब चाहे सड़क पर सिगनल की शर्तें हो या फिर गुड्डे व गुड़िया के खेल में अंतरिक्ष की सैर। सब में प्रतिबद्धता और तटस्थता रहती है। कवयित्री ने इस बात की ओर भी संकेत किया है कि - लापरवाही और अनुशासनहीनता के कारण जितनी भी सड़क दुर्घटनाएं होती हैं, बाल यातायात समाज बचपन में खेल - खेल में भी ऐसा नहीं करते हैं। स्वास्थ्य व प्रगतिशील समाज के निर्माण की परिकल्पना तभी साकार हो सकती है, जब परस्पर ईर्ष्या- द्वेष को अंतर्मन से तिलांजलि देकर, वसुधैव कुटुंबकम की भावना से मन की भावनाओं को आंदोलित (आनंदित) किया जाए। विडंबना यह है कि विश्व भर में प्रतिस्पर्धा की होड़ ने मानवता पर पहरा डाल दिया है। आडंबर व मिथ्या का प्रत्येक मन पर ऐसा आवरण पड़ चुका है कि उसके चलते सन्मार्ग बहुत धुंधला दिखाई पड़ता है। संबंधों की बुनियाद इतनी कमजोर होती जा रही है कि तृणमूल की तरह क्षणभर में निकाल कर फेंक दिया जाता है, यह सोच कर कि संबंधों के बिरवे पुनः रोप देंगे। इन सबके विपरीत यदि बच्चों की दुनिया में प्रवेश किया जाए तो ज्ञात होता है कि वहाँ कोई रंजिशें या साजिसें नहीं रचायी जातीं। खेलकूद में भी एक दूसरे के स्वाभिमान का आदर किया जाता है। आपसी मेल मिलाप, समवेत स्वर में गायन और मस्ती के रंग में विभोर हो जाना ही बच्चों के मन की दुनिया का श्वेत, पुनीत और निर्मल पक्ष है। बच्चे तो खेल-खेल में अपने खिलौनों में ही विश्व भ्रमण कर लेते हैं और जो उनके समक्ष या प्रत्यक्ष दिखाई देता है उसी को यथार्थ मानकर विश्वास कर लेते हैं। उनके मन में दोहरे विचार नहीं आते - एक और उद्धरण प्रस्तुत है -

"बच्चे मोर पंख में देखते हैं - मोर

और पिता में परमपिता। पिता ही परमेश्वर और माँ सर्वस्व।

कागज की हवाई जहाज की फूँक उड़ान में

उड़ते देखते हैं - अपने स्वप्नों का जहाज।

रेत के घरौंदे में देखते हैं - अपना पूरा घर

वे खेल- खेल में खेलते हैं - जीवन

और हम सब जीवन में खेलते हैं - खेल ।"8

बच्चे संवेदनशील अधिक होते हैं। उनकी कल्पना शक्ति बहुआयामी और व्यापक होती है। वे जो देखते हैं उसी को यथार्थ समझते हैं। उन्हें जो बताया जाता है उसे ही ध्रुव सत्य मानते हैं,क्योंकि पाखंड रहित होते हैं। यह सत्यबोध उन्हें उनके वातावरण व परिवेश से प्राप्त होता है। दो प्रकार के संस्कार बच्चों को प्राप्त होते हैं। एक वह संस्कार जो माता-पिता उन्हें देते हैं और दूसरा स्वनिर्मित संस्कार। बच्चों में जिज्ञासा इतनी प्रबल होती है कि वह हर क्षण अनुवेक्षण की दृष्टि से समूचे जगत को अपनी आंखों में समाविष्ट कर लेना चाहते हैं। कल्पनाओं की जिस डगर पर वे नित नूतन प्रयोग में व्यस्त रहते हैं, भविष्य में उसी को साकार करने की चेष्टा में लगे रहते हैं। अपने खेल - खेल में वह जीवन की कला को सीखते हैं, जबकि बड़े बुजुर्ग, वयस्क जीवन में ही खेल रचते रहते हैं, एक दूसरे को तिरस्कृत करने का, सामने वाले को पछाड़कर खुद आगे बढ़ जाने का। यहाँ कवयित्री का व्यंग्य प्रस्फुटित हुआ है। "जीवन का महत्वपूर्ण पड़ाव बाल जीवन है। आज का बालक, कल का नागरिक है। देश का भविष्य उसके कंधों पर टिका है। फिर भी उसके अस्तित्व को नकारा जाता है। बाल महोत्सव या बालदिवस मनाते समय संगोष्ठिओं में हमारे नेता, साहित्यकार सभी बड़ी - बड़ी बातें करते हैं।"9 उन बातों के सार में राजनेता, साहित्यकार या अन्य लोग बच्चों की इच्छाओं को उपेक्षित करते हुए स्वयं को ज्ञानवान व नीतिवान बताने की स्पर्धा में जुटे रहते हैं। पर बच्चों का भी अपना अलग समाज होता है उस समाज में न्याय भी रहता है। उनके खिलौने उनके अभिन्न मित्र होते हैं जो यथावत उन्हीं की भाषा बोलते हैं। पुष्पिता जी ने लिखा कि -

"बच्चे अपने खिलौनों की तरह ही

जीना चाहते हैं - भरी- पूरी रंगीन और गतिशील : जादुई दुनिया।

दुनिया से होती है - शिकायत जब लोग नाराज करते हैं - उन्हें

और खींच लाना चाहते हैं - उनकी दुनिया से उन्हें -

बगैर इच्छा के वह जिस दुनिया से अभी हैं वे बेखबर।"10

बच्चों का हृदय कल्पना, आशा, उत्साह, उमंग, विश्वास और प्राणि - मात्र के प्रति प्रेम की भावनाओं से लबालब भरा रहता है। पशु - पक्षी, पेड़ - पौधे, सहपाठी व सखा सब उनके मित्र होते हैं। उन्हीं के साथ उन्हीं के बीच खेल - खेल में वे अपना दिन बिता देते हैं। हम समझ नहीं पाते परंतु यदि सूक्ष्म अवलोकन करें तो स्पष्ट होगा कि बच्चे खेल में भी जीवन के गूढ़ व यथार्थ पक्ष को खोजते रहते हैं। उनकी दुनिया जादुई दुनिया के समान रंग बिरंगी व आकर्षक होती है। उनके मन में जो भी भावना उपजे, वे जो भी सोचें वही सत्य है, उनका भी अपना ही मजा है लेकिन बच्चों को शिकायत तब होती है जब उनके सोच के विपरीत उनसे कार्य कराया जाता है। इस संदर्भ में जयप्रकाश भारती ने लिखा कि - " बालक को जो साहित्य दिया जाए, वह उसका रागात्मक संबंध सृष्टि के साथ, नक्षत्रों के साथ, प्रकृति के साथ और पृथ्वी के साथ जुड़ सके। बालक जीवन का आलोक पा सके जो यथार्थ का नारा लगाकर दुकान चलाना चाहते हैं वे बालक की कल्पना को ही कुंठित कर देना चाहते हैं। यथार्थ में तो बालक जी रहा है। आधुनिकता के घेरे में चारों ओर से पहले ही मानसिक दबाव और तनाव तो उस पर बढ़े हुए हैं।"11 वास्तव में बच्चे प्रेम की भाषा के भक्त होते हैं। मृदुता, कोमलता ही उनका अलंकार होता है। उनके भीतर सन्निहित भेद को प्रत्यक्ष रूप देने में प्रेम ही वह कवच है जो उनके उद्गार को निकाल सकती है। परंतु बाल शोषण के जो इतने जघन्य और गर्हित कार्य वर्तमान समय में किए जा रहे हैं, वे सब बच्चों के कोमल मन पर कुठाराघात कर रहे हैं और उनके मन में बचपन की अल्हड़ता और बेपरवाही की जगह प्रतिशोध व आक्रोश की अनल पनपती जा रही है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। भौतिक विकास ने मानव मूल्य और व्यवहार को भी परिवर्तित किया है। सामाजिक संबंध, आचार व्यवहार, वैज्ञानिक संसाधन, प्रकृति चित्रण सब में परिवर्तन आया है, परंतु यदि आधुनिकता के इस दौर में कुछ भी परिवर्तित नहीं हुआ तो वह है - बच्चे, उनका बालपन, अबोधपन, बचपना, निश्छल मुस्कान और सरल संवेदनशील मन।

इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि विश्व भर में बाल विमर्श एक विशिष्ट मुद्दे के रूप में उपस्थित हुआ है। रूस, इंग्लैंड, भारत, जापान सर्वत्र बाल साहित्य लिखने का कार्य हो रहा है। हिंदी साहित्य की अतुकांत कविता प्रवृत्ति ने बाल

साहित्य में भी प्रवेश किया है। इसमें विषय, भाषा, भाव सब कुछ हो सकता है पर जिस लय की ओर बालक आकर्षित होता है, कविता कंठस्थ कर लेता है,वह सहजता अतुकांत कविता में नहीं है। आज जो अतुकांत कविताओं का दौर आया है इससे प्रवासी साहित्यकार भी अछूते नहीं रहे। प्रवासी हिंदी कविताओं में कवियों ने बाल विमर्श और बाल साहित्य दोनों पक्षों को उद्घाटित किया है। जहाँ सुरेश चंद्र शुक्ल जी ने बचपन की स्मृतियों को तुकबंदी, भावपूर्ण मनमोहक कविताओं की सर्जना की वहीं पुष्पिता अवस्थी ने अतुकांत कविताओं द्वारा गंभीर व चिंतनशील, प्रेरक कविताओं का प्रणयन किया है। आपकी कविताओं के माध्यम से आपने यह स्पष्ट किया है कि जितना उत्कृष्ट, संवेदनशील और प्रेरक साहित्य लिखा जाएगा, बच्चों के लिए उतना ही उपयोगी होगा और आज के बच्चें ही भविष्य व समाज के निर्माता हैं। अतः बौद्धिक विकास की समृद्धि के हित में साहित्य सृजन प्रभावी ढंग से होना आवश्यक है। पुष्पिता जी ने जिन बाल कविताओं की रचना की है वे साहित्य कम, विमर्श अधिक हैं। यदि इस प्रकार इस बात की पुष्टि की जाए कि कवयित्री ने अपनी कविता के द्वारा बड़े, वयस्क व अन्य नागरिकों, अभिभावकों के चिंतन प्रक्रिया को बाल साहित्य के प्रति सोचने हेतु कलम उठाया है तो शायद गलत न होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1- टैगोर विकिपीडिया से
2- हरि कृष्ण,बाल साहित्य का स्वरूप और विवेचन, पृ॰सं॰- 08
3- वही, पृ॰सं॰ – 13
4- पॉल हेजार्ड - बुक चिल्ड्रेन एण्ड मेन - पृ. सं. – 42
5- शरद आलोक, प्रवासी का अंतर्द्वंद, पृष्ठ संख्या – 66
6- वही, पृ॰सं॰- 12 -13
7- पुष्पिता अवस्थी,गर्भ की उतरन,बच्चों के सपनों के लिए, पृ॰-97
8- पुष्पिता अवस्थी - गर्भ की उतरन, बच्चों के सपनों के लिए, पृष्ठ संख्या, 92
9- बी.मोहिनी -आर. श्रीदेवी, उन्नीस सौ सत्तर के बाद के उपन्यासों में बाल मनोविज्ञान, पृष्ठ संख्या – 13
10- पुष्पिता अवस्थी, गर्भ की उतरन, बच्चों के सपनों के लिए, पृष्ठ संख्या – 85
11- जयप्रकाश भारती - भारतीय बाल साहित्य का इतिहास की भूमिका से